

दीपावली 2024

ज्ञान बढ़ाओ प्रतियोगिता

भगवान महावीर जीवन परिचय

English Version: [Please click here](#)

"जैन" शब्द की वर्तमान व्याख्या, जैन कल में उत्पन्न व्यक्ति – इस प्रकार संकुचित बन गई है। परंतु यदि देखा जाए तो जन्म के आधार पर जातियों का विभाजन था ही नहीं। आदिनाथ भगवान के काल में कर्म आधारित जातियों का विभाजन था। अध्ययन-अध्यापन का कार्य करने वाले ब्राह्मण, रक्षण का कार्य करने वाला क्षत्रिय, व्यापार करने वाला वणिक और इन सभी के कार्यों में सेवा रूप कार्य करने वाला शूद्र। जैन कुलोत्पन्न व्यक्तियों में व्यापार आदि की प्रधानता होने से वे जैन वणिक कहलाए। परंतु उनमें भी जो संरक्षण आदि कार्य करते थे, उन्हें क्षत्रिय आदि नाम प्राप्त थे। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो जैन मान्यता के अनुसार सभी 24 तीर्थंकर क्षत्रिय थे। फिर भी, वणिक वृत्ति प्रधान जैनियों ने, क्षत्रिय कल में उत्पन्न राग-द्वेष का भाव त्यागने वाले व्यक्तियों को भगवान तीर्थंकर के रूप में स्वीकार किया है। इसी कारण केवल कुलोत्पन्न आधार पर वर्तमान जाति विभाजन की भावना को संकुचित कहा गया है।

फिर प्रश्न है, जैन कौन हैं? जिस प्रकार शिव को मानने वाले शैव, विष्णु को मानने वाले वैष्णव, और गौतम बुद्ध को मानने वाले बौद्ध होते हैं, उसी प्रकार जिन (अरिहंत) को मानने वाले जैन होते हैं। जिन कोई विशेष व्यक्ति नहीं हैं, बल्कि जिसने राग और द्वेष को जीता है, वही जिन है। चाहे वह ब्राह्मण कुलोत्पन्न हो या क्षत्रिय आदि। आप उसे कुछ भी नाम दें – बुद्ध, वीर, जिन, हरि-हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहें।

जैन मान्यता के अनुसार यह विश्व अनादि निधन और स्वयं निर्मित है। कालचक्र के अनुसार 20 कोड़ा-कोड़ी सागर वर्षों के एक कल्पकाल को दो भागों में विभाजित किया गया है। जिसमें सुख, आयु, शरीर, अवगाहना आदि का हास होता है, उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं, और जिसमें यह सब बढ़ते जा रहे हैं, उसे उत्सर्पिणी काल कहा जाता है। ये दोनों काल 10-10 कोड़ा-कोड़ी सागर वर्षों के होते हैं।

1. सुखमा-सुखमा
2. सुखमा
3. सुखमा-दुःखमा
4. दुःखमा-सुखमा
5. दुःखमा
6. दुःखमा-दुःखमा

ये अवसर्पिणी काल के छह भेद हैं। इनके नामों से ही सुख का हास दिखता है। इसके विपरीत:

1. दुःखमा-दुःखमा
2. दुःखमा
3. दुःखमा-सुखमा
4. सुखमा-दुःखमा
5. सुखमा
6. सुखमा-सुखमा

ये उत्सर्पिणी के छह भेद हैं। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के दुःखमा-सुखमा काल में ही तीर्थकरों का जन्म होता है। यह काल उत्सर्पिणी में तीसरे और अवसर्पिणी में चौथे क्रम पर आता है। वर्तमान में सुख, शरीर, और अवगाहना का हास हो रहा है, इसलिए यह अवसर्पिणी काल है। इसमें भी कुछ अपवादात्मक कारणों से इसे हुंदावसर्पिणी नाम मिला है।

उत्सर्पिणी काल हो या अवसर्पिणी, दोनों कालों में 24-24 तीर्थकरों का जन्म हुआ है। न एक कम, न एक ज्यादा। वर्तमान अवसर्पिणी में हुए 24 तीर्थकरों में प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव हुए, जिनका चिन्ह वृषभ अर्थात् बैल है। अंतिम तीर्थकर महावीर हुए, जिनका चिन्ह शेर अर्थात् सिंह है। इन सभी तीर्थकरों ने अपने जीवन में राग-द्वेष का अभाव किया और वीतरागी बने। वीतरागी होने के बाद सर्वज्ञ बने, और सर्वज्ञ-वीतरागी होने के बाद जगत कल्याणकारी उपदेश दिया, इसी कारण उन्हें हितोपदेशी कहा गया। जो वीतरागी, सर्वज्ञ, और हितोपदेशी होते हैं, वे ही तीर्थकर कहलाते हैं।

संसारि प्राणियों के उद्धार में निमित्त होने वाले तीर्थकर विशेष पुण्यशाली जीव होते हैं। उनके माता के गर्भ में आने से छह महीने पहले ही उनकी जन्मभूमि पर इंद्र द्वारा प्रतिदिन तीन बार 3.5 करोड़ रत्नों की वर्षा कराई जाती है। वहां उत्सव का माहौल बन जाता है। इन तीर्थकरों के जीवन की पांच घटनाएं कल्याणकारी मानी जाती हैं, जिन्हें 'पंचकल्याणक' कहा जाता है। ये पांच कल्याणक हैं: 1. गर्भ कल्याणक, 2. जन्म कल्याणक, 3. तप/दीक्षा कल्याणक, 4. केवलज्ञान कल्याणक, 5. निर्वाण/मोक्ष कल्याणक।

तीर्थकर परमेष्ठी का शरीर सर्वांग सुंदर होता है। समचतुरस्र संस्थान और वज्रवृषभनाराच संहनन होता है। शरीर पर 1008 उत्तम चिन्ह होते हैं। उनका शरीर पसीने और मल-मूत्र से रहित होता है और रक्त दूध जैसा सफ़ेद होता है। सामान्य जीव को अपने जीवन में आगे बढ़ने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है, जबकि तीर्थकर का जीव स्वयं बुद्ध कहलाता है। उसे दीक्षा ग्रहण करने के लिए किसी के पास नहीं जाना पड़ता। समय आने पर वह स्वयं ही दीक्षा ग्रहण करते हैं। इसी कारण वह स्वयं दीक्षित भी कहलाते हैं। विशिष्ट पुण्य उदय के कारण तीर्थकर के जीव के गर्भ में आने के छह महीने पहले से स्वर्ग की देवियां, उनकी सेवा में तत्पर रहती हैं। यह जीव गर्भावस्था से ही तीन ज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान का धारी होता है।

इस अवसर्पिणी के पहले तीर्थकर ऋषभदेव के बाद अजितनाथ, संभवनाथ, और अभिनंदननाथ.... आदि इस प्रकार एक के बाद एक 24 तीर्थकर हुए हैं। सभी ने आत्मकल्याण करने के बाद और ज्ञान प्राप्ति के बाद समवशरण के माध्यम से जनकल्याण भी किया। तीर्थकर को केवल ज्ञान होते ही सौधर्म इंद्र के आदेश पर कुबेर इंद्र द्वारा समवशरण की रचना की जाती है। तीर्थकर परमेष्ठी की धर्मसभा को ही समवशरण कहते हैं। इस धर्मसभा में केवल मनुष्य जाति के ही जीव नहीं होते, बल्कि देव, और तिर्यच जाति के जीव भी अपने-अपने कल्याण साधने के लिए उपस्थित रहते हैं। कुल 12 सभाओं में देव जाति के जीवों के लिए 8 सभा, मनुष्य जाति के लिए 3 सभा, और तिर्यच जाति के लिए एक सभा होती है। 12 सभा का मतलब 12 कोठे हैं। अपने-अपने स्थानों पर बैठकर ये जीव तीर्थकर भगवान की दिव्य ध्वनि को गणधर के माध्यम से अपनी-अपनी भाषाओं में समझकर तत्त्व ज्ञान को ग्रहण करते हैं। शेर-गाय, सर्प-नेवला इस प्रकार विरुद्ध स्वभाव के जीव भी समवशरण में अपनी शत्रुता भूलकर आत्मस्वभाव के मर्म को, वस्तु के स्वरूप को समझते हैं। सच कहा जाये तो ऐसे तीर्थकरों के काल में जन्म होना, उनका साक्षात् दर्शन करना, और उनके दिव्य ध्वनि श्रवण का लाभ प्राप्त करना एक अनुपम घटना है। लेकिन इतने मात्र से ही सुख प्राप्ति से ही नहीं होगी। दिव्य ध्वनि श्रवण के बाद तदनुसार जीवन परिवर्तन से ही यह सब संभव है।

तीर्थकर परमेष्ठी के केवल ज्ञान के बाद समवशरण में उनकी जो पहली दिव्य ध्वनि होती है, तब से उनका शासनकाल माना जाता है, और अगले तीर्थकर की पहली दिव्य ध्वनि तक यह शासनकाल चलता रहता है। इस प्रकार, प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव की प्रथम दिव्य ध्वनि से द्वितीय तीर्थकर अजितनाथ

भगवान की प्रथम दिव्य ध्वनि तक, तीर्थंकर ऋषभदेव का शासनकाल था। इस प्रकार क्रम से 23 तीर्थंकरों का शासनकाल चलता रहा।

23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान के शासनकाल में, उस समय भरत क्षेत्र में वैशाली गणराज्य के कुंडग्राम में राजा सिद्धार्थ अपनी महारानी त्रिशला देवी के साथ रह रहे थे। इस वैशाली कुंडग्राम की शोभा अयोध्या जैसी थी। वहां के जीवों के परिणामों में भी प्रभु के अवतरण के पहले से ही बदलाव आना शुरू हो गया था। प्रजाजनों में सुख, समृद्धि, एवं आनंद की वृत्ति होने लगी। वैशाली कुंडग्राम में आश्चर्यजनक परिवर्तन दिखने लगे राजा सिद्धार्थ के प्रांगण में प्रतिदिन तीन बार 3,50,00,000 रत्नों की वर्षा होने लगी। इन आश्चर्यजनक परिवर्तनों को देख जिज्ञासु लोगों के समूह की शंका का समाधान अनुभवी एवं विद्वान लोगों ने किया कि यह अवसरिणी के अंतिम तीर्थंकर 24वें तीर्थंकर के अवतरण का शुभ चिन्ह है। विशेष पुरुषों के आगमन के पूर्व ही ऐसा भौतिक एवं मानसिक परिवर्तन संभव होता है, अर्थात् यह भरत क्षेत्र के भाग्योदय की पूर्व सूचना है।

वैशाली कुंडग्राम के 'नंद्यावर्त' नामक अपने राजप्रासाद में महारानी त्रिशला देवी महाराज सिद्धार्थ के साथ सुखपूर्वक रह रही थीं। महारानी त्रिशला देवी में भी आंतरिक और बाह्य परिवर्तन होने लगे। उन्हें आंतरिक अव्यक्त अनुभूति होने लगी। आषाढ़ शुक्ल षष्ठी की रात्रि में त्रिशला देवी अपने महल में सो रही थीं। रात्रि के पिछले प्रहर में उन्होंने उत्तम मंगलसूचक 16 स्वप्न देखे। त्रिशला देवी स्वप्न देख कर रोमांचित हो रही थीं, उसी समय महावीर प्रभु का जीव सोलहवें अच्युत स्वर्ग से त्रिशला देवी के गर्भ में अवतीर्ण हुआ। आनंददायक शुभ स्वप्नों को देखकर त्रिशला देवी अत्यधिक आनंदित हुईं। राज्यसभा में बैठे महाराज सिद्धार्थ के पास पहुंचकर महारानी ने देखे हुए सपनों को कहा और फल पूछा तब महाराज सिद्धार्थ के श्रीमुख से निकला कि 24वें तीर्थंकर का अवतरण महारानी के गर्भ में हो चुका है। स्वप्न का फल सुनकर महारानी को मानो कोई अचिंत्य निधि मिली हो, ऐसा अपार हर्ष हुआ। वैशाली गणतंत्र में खुशी और आनंद ही आनंद छा गया। 'धन्य है-धन्य है' ऐसी ध्वनि सभी के मुख से निकलने लगी। इंद्र-इंद्राणी ने वैशाली कुंडग्राम में आकर माता-पिता का सम्मान किया। दिक्कुमारी देवियां महारानी त्रिशला की सेवा में तत्पर हो गईं। मनुष्य और देवों की बात छोड़ो, नारकी जीवों ने भी नरकों में क्षणभर साता का वेदन किया। यह सब तीर्थंकर के गर्भकल्याण का प्रभाव था। अंतिम तीर्थंकर का यह जीव गर्भावस्था में भी सम्यग्दृष्टि एवं मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान का धारी था।

त्रिशला माता की सेवा में तत्पर दिक्कुमारी देवियां भी धर्म संबंधी शंकाओं का समाधान त्रिशला माता से प्राप्त कर रही थीं। मानो गर्भस्थ तीर्थंकर का जीव माता के मुख से उनकी शंकाओं का समाधान कर रहा हो। त्रिशला माता के इस प्रकार की धर्म चर्चा के साथ उत्तम प्रकार की भावनाएं भाते हुए 9 महीने आनंद के साथ बीते और प्रभु के साक्षात् अवतार की, जन्म की घड़ी आ गई। चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के मंगल अवसर पर वैशाली कुंडग्राम में प्रभु ने जन्म लिया। ईस्वी पूर्व 598 वर्ष, तारीख 28 मार्च, सोमवार - ज्योतिर्विद्या के अनुसार इस प्रकार की समस्त ग्रहों की सर्वोच्च स्थिति का उत्तम योग 10 कोड़ा-कोड़ी सागर में केवल 24 बार ही आता है। तब तीर्थंकर प्रभु का जन्म होता है।

तीर्थंकर बालक का जन्म होते ही इंद्र अपने ऐरावत हाथी पर बैठकर प्रभु के जन्मकल्याणक का मनाने हेतु देव-देवी परिवार सहित कुंडग्राम पहुंचा। शची इंद्राणी माता त्रिशला के कक्ष में पहुंचकर बालक तीर्थंकर को अपने हाथों में उठाती हैं। देव गति के जीवों में संतान उत्पत्ति नहीं होती। फिर भी स्त्रियोचित ममता भाव एवं तीर्थंकर प्रभु की भक्ति के भाव से शची इंद्राणी भाव-विभोर हो उठी। सौधर्म इंद्र का मन बालक तीर्थंकर को देखकर अपनी दो आँखों से समाधान नहीं कर पा रहा था। अतः वह सौधर्म इंद्र प्रभु के सौंदर्य को निहारने के लिए 1000 आँखों से देख रहा था। तात्पर्य यह है कि जिन के सौंदर्य को देखने के लिए 1000 आँखें भी कम पड़ रही थीं, उनके आंतरिक सौंदर्य का क्या कहना? सौधर्म इंद्र शाश्वत मेरु पर्वत पर बालक तीर्थंकर का जन्माभिषेक करने के लिए ले आए। ज्ञातव्य है कि जगत पूज्य बाल तीर्थंकर का जन्म 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान के मोक्ष गमन के 178 वर्ष बाद हुआ। बालक के बाएं पैर पर सिंह चिन्ह देखकर इंद्र ने उनका चिन्ह सिंह के रूप में प्रसिद्ध किया। भगवान के जन्माभिषेक के समय इंद्र ने 'वीर' नाम से बालक तीर्थंकर को संबोधित किया। सुमेरु पर्वत पर हुए जन्माभिषेक के पश्चात् प्रभु की

शोभायात्रा लेकर इंद्र वैशाली कुंडग्राम आए और बालक को माता को सौंप दिया और कहा कि यह वीर धर्मतीर्थ का उद्द्योत करने वाला है। राजा सिद्धार्थ और महारानी त्रिशला माता का सम्मान कर इंद्र स्वर्ग लोक लौट गए।

वीर बालक तीर्थंकर के साथ खेलने के लिए देव, छोटे बालक का रूप धारण करके क्रीड़ा करने लगे। तीर्थंकर बालक के साथ खेलना किसे अच्छा नहीं लगेगा। वीर बालक उन देवताओं के साथ खेल रहे हैं, देव कौन? मनुष्य कौन? यह पहचानना कठिन हो गया। वीर बालक के जन्म से ही वैशाली गणतंत्र का वैभव सभी दृष्टि से वृद्धिगत होने लगा। इसीलिए माता त्रिशला ने वीर बालक का नाम 'वर्धमान' रखा। बालक वर्धमान के मनोज शरीर में जन्म से ही 10 अतिशय थे। उनका शरीर मल-मूत्र से, पसीने से रहित, रक्त सफेद दूध जैसा, वज्रवृषभनाराच संहनन वाला, सुगंधित श्वास, अद्भुत रूप, अतिशय बल एवं मधुर वाणी थी। उनके शरीर में 1008 उत्तम चिन्ह थे। 56 कुमारी देवियां वर्धमान बालक को पालने में रखकर सुंदर मंगल गीत गाती थी। बालक वर्धमान अपनी माँ त्रिशला देवी के साथ बचपन से ही मोक्ष मार्ग की चर्चा करते थे। धन्य है वह माँ जो अपने बेटे के साथ धर्म की चर्चा कर रही है, और धन्य है वह बेटा जो बालक अवस्था में अपनी माँ के साथ गंभीर तत्त्व विचार से कभी नहीं थकता। क्या हम भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपने बच्चों को धर्म के संस्कार देने के लिए उनके साथ चर्चा करने को तैयार हैं? क्या उन्हें प्रतिदिन मंदिर भेज रहे हैं? क्या उन्हें पाठशाला भेज रहे हैं? चिंतनीय विषय!!

बालक वर्धमान थोड़े बड़े हुए, अपने साथियों के साथ खेल रहे थे। उसी समय एक भयंकर विषैला सांप फुफकारता हुआ वहां पर आया। साथी राजकुमार डरकर इधर-उधर डरकर भाग गए। परंतु बालक वर्धमान निडर बनकर सांप के साथ खेलने लगे। बालक की निर्भयता को देखकर सांप के रूप में आए संगम देव ने बालक वर्धमान की अतुल शक्ति पर शंका के लिए क्षमा मांगी। बालक को 'महावीर' नाम से संबोधित करते हुए संगम देव ने कहा कि हे भगवंत, आप सचमुच 'महावीर' हैं। आपके अतुल बल की प्रशंसा स्वर्ग के देव भी करते हैं। मैंने अज्ञान भाव से आपके बल शौर्य पर शंका की और सांप का रूप धारण कर आपकी परीक्षा ले रहा था। मुझे क्षमा करें। सच आप केवल वीर ही नहीं हैं, बल्कि महावीर हैं। अंतरंग कषायी रूपी शत्रुओं को जीतने वाले बाहरी संयोगी घटनाओं से क्या प्रभावित होंगे? जिनका सानिध्य पाकर विषैला सांप भी निर्विष होकर अहिंसक बनते हैं, मिथ्यात्व विष का वमन कर सम्यक्त्व अमृत का रसपान करते हैं।

वीर वर्धमान महावीर नाम को सार्थक करते हुए भगवान दर्शन, मोह एवं अनंतानुबंधी के क्षयपूर्वक पहले से ही क्षायिक सम्यकदृष्टि थे। आठ वर्ष की आयु में अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ का अभाव कर उन्होंने अणुव्रतों को अंगीकार किया। आत्मिक शुद्धता में एक देश वृद्धि को प्राप्त किया। कषायों को जीतने की वीरता प्रभु सदा करते रहे।

सात मंजिल वाले नंद्यावर्त नामक राजप्रसाद के चौथे मंजिल पर बालक महावीर ध्यानस्थ थे। उनके मित्र प्रथम मंजिल पर स्थित माँ को महावीर के बारे में पूछने लगे। माँ ने ऊपर देखने के लिए कहा। सातवीं मंजिल स्थित राजा सिद्धार्थ से पूछने पर उन्होंने नीचे देखने के लिए कहा। तब एक-एक मंजिल पर दूढ़ने वाले साथी माँ-पिता की बात से नाराज होकर महावीर से बात करने लगे। तब बालक महावीर ने अपने साथियों को माँ-पिता दोनों की बातों से उनकी दृष्टि से किस प्रकार सही है, यह समझाकर उनकी नाराजगी दूर की। बालक महावीर ने इस प्रकार अनेकांत सिद्धांत की और अनेकांत सिद्धांतों को बताने वाली स्याद्वाद शैली को समझाया। इसे न समझने वाले ही संसार में दुखी हैं। इसे समझकर सुखी होने का मार्ग बताकर बालक महावीर ने अपने साथियों को समझाया।

एक बार राजप्रसाद में बैठे महावीर ने 'बचाओ-बचाओ' की आवाज सुनी। राजा का हाथी पागल होकर राजमार्ग पर कोलाहल मचा रहा था। प्रजा भयभीत होकर इधर-उधर दौड़ रही थी। परम शांत के धारक महावीर ने राजमार्ग पर लोगों को शांत रहने को कहकर उन्मत्त हाथी की ओर बढ़े। क्रोध में आक्रांत हाथी भी महावीर की ओर दौड़कर आया, किन्तु उनकी सौम्य, शांत मुद्रा को देख हाथी भी स्थिर हो गया और शांति से महावीर के सामने खड़ा हो गया। सभी लोग देखते रह गए। क्रोधित हाथी को महावीर ने

क्षमा-शस्त्र से जीत लिया। हम अपने जीवन में क्रोध को क्रोध से, कषायों को कषायों से जीतना चाहते हैं। क्या यह कभी संभव होगा? चिंतनीय विषय।

एक बार महावीर अपनी माता के साथ नंद्यावर्त राजप्रासाद के झरोखे में बैठे थे उसी समय संजय-विजय नामक दो मुनिराज शाश्वत तीर्थधाम सम्मेलन शिखरजी से लौटते समय वैशाली कुंडगाम में सिद्धार्थ महाराज के राजप्रासाद के ऊपर से आकाश गमन कर रहे थे। उनके मन में तत्त्व संबंधी सूक्ष्म शंका थी। आकाश गमन करने वाले दोनों मुनिराजों की दृष्टि बालक महावीर पर जाते ही उनकी शंका दूर हो गई। अपने निःशंक हो जाने से दोनों मुनिराज की आत्मा प्रफुल्लित हो उठी। दोनों मुनिराज बालक तीर्थंकर की महिमा का विचार करने लगे। प्रसन्नचित होकर दोनों मुनिराज ने बालक महावीर को 'सन्मति' नाम से सम्बोधित किया।

मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान इन तीन उत्तम ज्ञान के धारक तथा इन्द्र द्वारा वीर, माता-पिता द्वारा वर्धमान, संगम देव द्वारा महावीर, दो मुनिराजों द्वारा सन्मति ऐसे चार उत्तम, सार्थक नामों को धारण करने वाले जगत उद्धारक बालक महावीर क्रम-क्रम से बड़े होने लगे। युवावस्था में आकर भी भौतिक रसों ने उन्हें कभी आकर्षित नहीं किया। अध्यात्म-रस के रसिक, राजकुमार महावीर राजयोग जैसा जीवन जीने लगे। अर्ध रात्रि में राजभवन के बाहर खड़े-खड़े ध्यान मग्न रहना, संसार से शून्य मनस्क होकर तत्त्व चिंतन में घंटों बैठना, राज्य कार्य में अरुचि होना। प्रजाजनों की सुख, दुख की बातें सुनकर संसार का स्वरूप और सच्चे सुख का मार्ग दिखाना इत्यादि बातें उनके जीवन का दिन क्रम बन गईं। ज्ञान चेतना से संपन्न राजकुमार महावीर राजा सिद्धार्थ के साथ राज्यसभा में बैठते तो थे, किन्तु इसमें उन्होंने कभी रस नहीं लिया। राजकुमार की वीरता एवं रूप गुण संपन्न युवावस्था को देखकर अनेक राजाओं की ओर से अपनी राजकुमारियों के साथ विवाह की बातें होने लगीं। राजा सिद्धार्थ एवं रानी त्रिशला देवी भी आने वाले संबंधों से बड़े खुश थे। अनुपम सुंदर राजकुमारी को बहू बनाने को उत्सुक थे। तब माता-पिता ने युवा महावीर की विवाह हेतु सम्मति चाही। किन्तु वह तो वीर थे, वीतरागता को वर्धमान करने वाले महावीर थे। संसार से विरक्त पंचेन्द्रियों के विषयों से परे चैतन्य का रसास्वादन करके मुक्ति सुंदरी से विवाह करना चाहते थे। अलौकिक मुक्ति सुंदरी को चाहने वाला सांसारिक भोगों की ओर कैसे आकर्षित होगा? निर्मोही युवा महावीर ने माता-पिता को भी पुत्र मोह छोड़ने की बात कही। कुंडगाम से निकटस्थ वैशालीनगर में त्रिशला देवी की छोटी बहन (महावीर की मौसी) चन्दनबाला ने महावीर के वैराग्य परिणति का हार्दिक स्वागत किया। महावीर कुमार के अविवाहित रहने की वार्ता जानकर मौसी चन्दनबाला ने भी आजीवन ब्रह्मचर्य का निर्णय किया। ऐसे दोनों की वैराग्यमयी जीवन सौरभ किसके मन को प्रफुल्लित नहीं करेगी?

राजकुमार महावीर की वैराग्य परिणति दिन प्रतिदिन बढ़ रही थी। साथ में उम्र भी। 30 वर्ष की अवस्था को प्राप्त राजकुमार महावीर का उपयोग निर्मलता को प्राप्त हो रहा था। एक दिन उन्हें जातिस्मरण हुआ। जिसमें उन्होंने अपने पूर्व जन्म देखे। चक्रवर्ती का वैभव, सिंह की अवस्था, सम्यक्त्व का बोध करते हुए दो मुनिराज, नरकों की स्थिति आदि। अपने पूर्व भवों को जातिस्मरण से जानकर महावीर ने जिन दीक्षा का निर्णय लिया महावीर का निर्णय मतलब वेज निर्णय, अचल निर्णय, दृढ़ निर्णय। माता ने आज विशेष रूप से चिंता मग्न महावीर को देखकर कुछ पूछना चाहा। तब राजयोगी महावीर ने जातिस्मरण से पूर्व भवों को देख विरक्ति की बात कही। आज ही (मोगशीर्ष कृष्ण दशमी) मुनि दीक्षा अंगीकार करके शुद्ध उपयोग द्वारा निज परमात्मा की साधना की बात की। माँ-बेटी में यह चर्चा चल ही रही थी कि इंद्रसभा में इंद्र का आसन डोल उठा। अपने अवधि ज्ञान से यह प्रभु के दीक्षा कल्याणक का अवसर है, यह जानकर सभी देवगण तत्काल वैशाली कुंडगाम में उपस्थित हुए। दीक्षा कल्याणक के अलावा अन्य कल्याणक में ना जाने वाले लौकांतिक देवों ने प्रभु की वैराग्य भावना की स्तुति की। शृंगार रस पर विजय पाते वैराग्य रस की अनुमोदना से सारा वातावरण ही वैराग्यमय बना। रागमय वस्त्रादि शृंगार का त्यागकर वीतरागी रस को प्राप्त करने के लिए महावीर वन जाने को वैराग्य परिणति पूर्वक 'चन्द्रप्रभा' नामक पालकी में आरुढ़ हो गए। तीर्थंकर प्रभु के सभी कल्याणक मनाने वाले देव जैसे ही पालकी उठाने के लिए आगे बढ़े। मनुष्य राजाओं ने उन्हें रोककर पालकी उठाने का पहला मान, चारित्र्य ग्रहण करने की योग्यता केवल मनुष्यों को होने से हमारी है, ऐसा कहा। देव और मनुष्यों में पहले पालकी कौन उठाएगा

इस विषय पर विवाद-विवाद हुआ। अंत में महावीर प्रभु ने चारित्र की योग्यता के पक्ष को प्रथम सम्मान दिया। देवी शक्तियों से सम्पन्न होकर भी चारित्र ग्रहण करने की अयोग्यता से इंद्र नाराज हुआ। मेरा सारा वैभव लेकर भी कुछ क्षणों के लिए मुझे चारित्र दे दो ऐसा कहने लगा। चारित्र ग्रहण करने की योग्यता केवल मनुष्य गति में ही संभव होने से सौधर्म इंद्र का अपना इंद्रपद भी चारित्र के सामने, मनुष्य भव के सामने तुच्छ लगने लगा। अंततः मनुष्य राजाओं ने प्रथम 7 पग पालकी उठाई, फिर सात पग विद्याधर राजाओं ने उठाई। उसके पश्चात् देव पालकी उठाकर महावीर प्रभु को वन की ओर ले गए। देव लोक की दिव्यता से भी मनुष्य लोक का संयम महान है। इसी कारण संयम के सामने सौधर्म इंद्र को भी नतमस्तक होना पड़ा।

गंगा नदी के पश्चिम तट पर नागखण्ड नामक उपवन में महावीर प्रभु पालकी से उतरकर एक शिला पर बैठ गए। उत्तरमुखी होकर 'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर शरीर के सभी आभूषण, वस्त्र आदि का त्याग किया और मागशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन नग्न दिगंबर मुनि दशा को अंगीकार किया। वे स्वयं दीक्षित हुए। मुनि दीक्षा के अवसर पर उनकी आयु 30 वर्ष की थी। उन्होंने दीक्षा के बाद मुनि महावीर भारतवर्ष में विहार करते रहे। मुनि महावीर का सर्वाधिक विहार जिस प्रांत में हुआ, उसका नामकरण ही बिहार हुआ। आज भी बिहार प्रांत में महावीर भगवान से संबंधित अनेक स्थान विद्यमान हैं।

मुनि महावीर की मुनि अवस्था 12 वर्ष की रही। विहार करते करते वह योगिराज उज्जैन की नगरी में पहुँचे। वह शिप्रा नदी के किनारे अतिमुक्तक नामक भयानक श्मशान में ध्यानमग्न हो गए। परम शांत, अडोल, अकंप, वीतरागी मुनिराज आत्मउद्यान में क्रीड़ा कर रहे थे, उसी समय इंद्र सभा में उनके वीरता की प्रशंसा हुई। तब भव्य नाम के एक यक्ष ने यह प्रशंसा सुनी और वह मुनि की परीक्षा लेने हेतु श्मशान में उपस्थित हुआ। उसने वहाँ आकर भयंकर रौद्र रूप धारण किया। सिंह, अजगर आदि रूप धारण कर ध्यानमग्न मुनि का ध्यान भंग करने की पूरी कोशिश की, पत्थर बरसाए, आग के गोले फेंके, परंतु वह तो अंतर्मुखी थे। बाह्य में होने वाली घटनाओं से पूर्णतः अनभिज्ञ। मुनिराज पर भव्य यक्ष के उपसर्ग का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सच कहा, वीतरागी आत्म साधना करने वाले मुनि भगवन्तों को उनकी आत्म आराधना से विचलित करने का सामर्थ्य किसी में भी नहीं है। वि-भव (भवं-रहित) बनने के लिए तत्पर हैं मुनिराज, को भव्य यक्ष का उपद्रव परास्त नहीं कर पाया। मुनिराज के शाल रस के सामने यश के रौद्र रस ने पराजय स्वीकार की। इस प्रकार परीक्षा लेने आए भव्य यक्ष ने मुनि के चरणों में झुककर क्षमा याचना करते हुए कहा, "हे भगवन्, आप केवल वीर महावीर ही नहीं, बल्कि आप 'अतिवीर' हैं।" रौद्र रूप छोड़कर क्षमा याचना करते हुए मुनिराज और उनकी कठोर तपस्या की स्तुति करते हुए यक्ष अपने स्थान चला गया। इस प्रकार हमारे कथानायक वीर, महावीर, वर्धमान, सन्मति, और अतिवीर इन पाँच सार्थक नामों के धारक बने।

एक बार महावीर की मौसी चंदनबाला अपने उद्यान में सखियों के साथ खेल रही थी। उसके सौंदर्य और यौवन से आकर्षित होकर एक विद्याधर ने उसका अपहरण कर लिया, परंतु बाद में अपनी पत्नी के भय से उसने चंदनबाला को कौशांबी नगर के घने जंगल में छोड़ दिया। जंगल में भील के सरदार ने उसे पकड़कर एक वेश्या को बेच दिया। उस वेश्या ने चंदनबाला को कौशांबी नगर के वेश्या बाजार में बेचने के लिए खड़ा किया। हाय रे कर्म की विचित्रता! एक सति नारी वेश्या के बाजार में वेश्या के हाथों बिक रही है। पुण्य-पाप का खेल देखिए कि जिस कौशांबी के बाजार में चंदनबाला बिक रही है, उसी कौशांबी की महारानी मृगावती स्वयं चंदनबाला की बहन थी। महावीर की एक मौसी वेश्या के हाथों बिक रही है, तो एक मौसी उसी नगर की महारानी हैं, किन्तु घटना से अपरिचित हैं। वास्तव में सबको अपने पुण्य-पाप के फल को भोगना ही पड़ता है।

उसी नगर के एक धर्मात्मा सेठ वृषभदत्त ने बिकती हुई चंदनबाला को देखा। उन्होंने सोचा, "यह सुंदर महिला वेश्या नहीं हो सकती," और यह विचार कर जब वे नज़दीक गए, तो उन्होंने सुंदरी के मुख से 'णमोकार' मंत्र सुना। पाप कर्म का फल भोगती यह सुंदरी, सेठ ने उसे अपनी बेटी समान मानकर वेश्या को उसकी मांगी हुई कीमत देकर खरीद लिया और उसे अपने घर ले आए। संतानहीन सेठ वृषभदत्त ने उसे धर्मपुत्री माना। परंतु, सेठानी सुभद्रा का मन अनेक शंकाओं से भर गया। सच है, पाप कर्म के उदय में

निंदा का पात्र होना ही पड़ता है। एक दिन जब सेठ बाहर गाँव गए हुए थे, तो मत्सर भाव से सेठानी ने चंदनबाला के सुंदर केश काट दिए। यह सोचकर कि उनके पति चंदनबाला के सौंदर्य से मोहित थे, सुभद्रा ने उसे एक कठोर कोठरी में बंद कर दिया। चंदनबाला ने तीन दिन तक उपवास किया। जब सेठ तीन दिन बाद वापस आए और चंदनबाला नहीं दिखी, तो उनके मन में अनेक शंकाएं उत्पन्न हुईं। अंत में, उन्होंने चंदनबाला को एक बंद कोठरी में हाथ-पैर में लोहे की बेड़ियों से जकड़ा हुआ देखा, तब सेठ सब समझ गए। सबसे पहले उन्होंने सोचा कि इसे बंधन मुक्त करना चाहिए, इस भावना से वे लोहार को बुलाने गए। उसी समय मुनि महावीर आहार के लिए चंदनबाला की उस कोठरी में पहुंचे। चंदनबाला भी सच्चे दिल से यह सोच रही थी कि किसी मुनिराज को आहार कराके धन्य हो जाऊं, परंतु, हाय रे! मेरी यह स्थिति। सच्चे मन से आहार कराने की भावना, उसके पास उड़द के दानों का होना, मुनि महावीर का वहां आना और सती चंदनबाला के पाप कर्म निर्जरित होकर पुण्य फल का उदय में आना एक साथ हुआ। मुनिराज महावीर के हाथ में उड़द का प्रथम ग्रास चंदनबाला ने रखा, उसी समय वहां देव दंडुभि रत्नवृष्टि हुई। सब तरफ सती चंदनबाला और मुनि महावीर की जय-जयकार हुई। सेठ वृषभदत्त लोहार को लेकर आने से पहले ही चंदनबाला बेड़ियों से मुक्त हो गई थी। जिस भाग्यवान महिला के हाथों से मुनिराज का पारणा हुआ था, उसे देखने के लिए वहां भीड़ इकट्ठी हो गई। रानी मृगावती भी वहां आईं। "यह और कोई नहीं, मेरी बहन चंदना हैं" यह जानकर महारानी मृगावती अत्यंत हर्षित हुईं। चंदनबाला के साथ हुई घटनाओं से उन्हें खेद भी हुआ। महारानी मृगावती अपनी बहन को अपने राजमहल में ले जाना चाहती थीं, किंतु अब चंदनबाला न संसार से विरक्ति की भावना प्रकट की। अत्यधिक आग्रह पर, कुछ दिन उन्होंने अपनी बहन मृगावती के घर वैराग्यपूर्ण बिताए।

महावीर मुनिराज विहार करते हुए सम्मदशिखरजी पहुंचे। एक भावतीर्थ तो दूसरा स्थापना तीर्थ, एक चेतन तीर्थ तो दूसरा अचेतन तीर्थ। मुनिराज अपने रत्नत्रय की साधना करते-करते विहार कर रहे थे। एक दिन, वे जाम्बिक ग्राम के समीप ऋजुकुल नदी के तट पर आए। वहां एक शिला पर ध्यानस्थ हो गए, और शेष मोह से युद्ध करने के लिए वीर्य युद्धा खड़ा हो गया। शुद्ध उपयोग रूप चक्र की धार से मोह शत्रु को काटने लगे। क्षपक श्रेणी में आगे बढ़ते-बढ़ते, आठवें, नौवें, और दसवें गुणस्थान में क्षणमात्र में पहुंच गए। महावीर मुनिराज सूक्ष्म लोभ का भी अभाव कर पूर्ण वीतरागी हो गए। सूर्यास्त से पूर्व, महावीर प्रभु के अंदर में कभी अस्त न होने वाला केवलज्ञान का सूर्य जगमगा उठा। यह केवलज्ञान कल्याणक की तिथि थी वैशाख शुक्ल दशमी।

प्रभु ने चार घातिया कर्मों का अभाव कर अरिहंत अवस्था प्राप्त कर ली। केवलज्ञान होते ही महावीर प्रभु पृथ्वी से 5000 धनुष ऊपर अंतरिक्ष में विराजमान हो गए। उनका शरीर छाया रहित, परम औदारिक बन गया। सौधर्म इंद्र के आदेशानुसार कबेर इंद्र ने समवसरण की रचना की। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान की धर्मसभा 12 योजन व्यास वाली थी, और महावीर भगवान की धर्मसभा 1 योजन व्यास वाली थी। लेकिन दोनों ही धर्मसभाओं में दोनों भगवंतों ने जिस चैतन्य तत्त्व के वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन किया, वह समान था।

महावीर भगवान का समवसरण की रचना तो हुई, किन्तु गणधर के अभाव में दिव्य ध्वनि नहीं खिरी। प्रतिदिन सभा लगती, लोग सुनने आते, लेकिन दिव्य देशना नहीं होती। इस प्रकार 66 दिन बिना देशना का समवसरण चलता रहा। आषाढ़ मास समाप्त हो गया और श्रावण कृष्ण प्रतिपदा का आरंभ हुआ। उस दिन सौधर्म इंद्र ने अपने अवधिज्ञान से जाना कि गणधर के अभाव में दिव्य ध्वनि नहीं हो रही है। अब गणधर बनने योग्य व्यक्ति कौन हो सकता है? सौधर्म इंद्र ने देखा कि 500 शिष्यों के गुरु, वेद पुराणों के ज्ञाता, घोर मिथ्यात्वी इंद्रभूति गौतम ही गणधर बनने योग्य हैं, ऐसे घोर मिथ्यादृष्टि सहजता से समवसरण में नहीं आएंगे। अतः सौधर्म इंद्र ने एक युक्ति बनाई। उन्होंने वृद्ध बट्ट ब्राह्मण का रूप धारण किया और इंद्रभूति गौतम के पास पहुंचे। वहां उन्होंने 'त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कर्म नव पद सहितं' श्लोक का अर्थ पूछा। संस्कृत के प्रकांड विद्वान होते हुए भी इंद्रभूति गौतम ने छह द्रव्य और नौ पदार्थों के बारे में कभी नहीं पढ़ा था। मान कषाय के वश में होकर, अपनी अज्ञानता को छुपाते हुए उन्होंने कहा, "इस श्लोक का अर्थ तुम्हें बताने के बजाय मैं तुम्हारे गुरु से ही बताऊंगा, मुझे उनके पास ले चलो।" सौधर्म इंद्र यही चाहते थे, और उनकी युक्ति सफल हो गई। इंद्रभूति गौतम अपने 500 शिष्यों, उनके भाइयों

अग्निभूति और वायुभूति के साथ समवसरण की ओर चल पड़े। जैसे-जैसे वे समवसरण के निकट पहुंचते, इंद्रभूति गौतम की कंधेयें कम होती जा रही थीं। समवसरण में स्थित मानस्तंभ के पास पहुंचते ही इंद्रभूति गौतम का मान गलित हो गया।

समवसरण का वैभव और उसमें विराजमान महावीर भगवान की अद्भुत वीतरागता को देखकर इंद्रभूति गौतम ने नम्रीभूत होकर अपने 500 शिष्यों के साथ उस सर्वोदय आत्मा के चरणों में संयम धारण किया। सम्यक्त्व तो पहले से ही धारण किया हुआ था। गौतम स्वामी मुनि बनकर ऐसे अंतर्मुखी हुए कि वे तत्त्वज्ञान (मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय) के धारी बन गए, और महावीर भगवान के प्रथम गणधर बने। 66 दिन से समवसरण में गणधर के अभाव से जो दिव्य ध्वनि नहीं हो रही थी, वह प्रारंभ हुई। यह प्रथम देशना राजगृही नगर के विपुलाचल पर्वत पर सर्वप्रथम श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन हुई। अतः इसी दिन को वीर शासन जयंती के नाम से जाना जाता है। जैन कुल में उत्पन्न अनेक भाई-बहनें इस वीर शासन जयंती शब्द से अपरिचित हैं। कुछ महावीर जन्म जयंती को ही वीर शासन जयंती मानते हैं। लेकिन न तो महावीर जन्म जयंती वीर शासन जयंती है और न ही जिस दिन उन्हें केवलज्ञान हुआ। बल्कि केवलज्ञान के 66 दिन बाद जब उनकी प्रथम दिव्य ध्वनि खिरी, वह श्रावण कृष्ण प्रतिपदा का दिन ही वीर शासन जयंती है।

एक दिन राजा श्रेणिक हाथी पर बैठकर महावीर भगवान के समवसरण में जा रहे थे। उसी समय एक मेंढक भी मुँह में फूल लेकर उसी रास्ते से महावीर भगवान के समवसरण में जा रहा था। वह मेंढक पूर्व भव का नागदत्त सेठ था। वह मेंढक श्रेणिक राजा के हाथी के पैरों के नीचे आकर मर गया। भगवान की पूजा करने के भाव से वह मरकर देव गति में गया। और राजा श्रेणिक के पहले देव बनकर समवसरण में पहुंचा। आने वाली उत्सर्पिणी के प्रथम तीर्थंकर अर्थात् राजा श्रेणिक का जीव महापदम नाम के प्रथम तीर्थंकर होंगे। तब तक महावीर भगवान का शासनकाल कहलाएगा। वर्तमान में श्रेणिक राजा का जीव अपने कर्मों का फल नरक में भोग रहा है। महावीर भगवान के निर्वाण के पश्चात् अवसर्पिणी का पाँचवा काल 21,000 वर्ष और छठा काल 21,000 वर्ष होगा। तदनंतर उत्सर्पिणी का प्रथम काल 21,000 वर्ष और द्वितीय काल 21,000 वर्ष होगा, इस प्रकार 84,000 वर्ष बाद उत्सर्पिणी के तृतीय काल (सुक्ष्म-सुख्मा) में श्रेणिक राजा का जीव महापदम नामक प्रथम तीर्थंकर बनेगा। इसी बीच भरत क्षेत्र में तब तक कई तीर्थंकर नहीं होंगे।

महावीर भगवान के कुल 11 गणधर हुए। जिनके नाम गौतम गणधर, अग्निभूति, वायुभूत, शुचिदत्त, सुधर्म, माण्डव्य, मौर्यपुत्र, अकम्पन, अंचल, मेदार्य, एवं प्रभास हैं। महावीर भगवान की समवसरण में कुल 700 केवलज्ञानी, 14,000 मुनिराज, और 36,000 आर्यिकायें थीं। इन आर्यिकाओं की प्रमुख आर्यिका चंदनबाला थी।

12 वर्ष की मुनि अवस्था के बाद अर्थात् 42 वर्ष की आयु में महावीर भगवान को केवलज्ञान हुआ। तत्पश्चात् 30 वर्षों तक अर्थात् 42-72 वर्ष की आयु तक अरिहंत अवस्था में महावीर भगवान समवसरण सहित विहार करते रहे। विहार करते-करते प्रभु बिहार प्रान्त की पावापुरी नगरी पहुंचे। प्रतिदिन तीन बार दिव्यध्वनि होती थी। पावापुरी में कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी के दिन महावीर भगवान की अंतिम दिव्यध्वनि खिरी। अतः तत्कालीन लोगों ने उस तेरस को धन्य तेरस कहा। धनलोलुप लोगों ने उसे धनतेरस नाम देकर चंचल धन की पूजा धनतेरस को करने लगे। इस प्रकार प्रभु की प्रथम देशना राजगृही विपुलाचल पर्वत पर और अंतिम देशना पावापुरी में हुई। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को भगवान महावीर के संशरीर दर्शन तो हुए किन्तु देशना नहीं मिली। और कार्तिक कृष्ण अमावस्या के दिन न तो प्रभु की देशना हुई और न प्रभु के दर्शन हुए। प्रभु के निर्वाण के समय पंचम काल के प्रारंभ होने में 3 वर्ष, 8 माह, और 15 दिन बाकी थे।

महावीर भगवान निर्वाण को प्राप्त हुए। अनंत अनंत काल के लिए अतींद्रिय सुखी हुए। यह तो उनके लिए एवं हमारे लिए आनंद की बात है। किंतु उनका विरह, प्रतिदिन मिलने वाली साक्षात् दिव्य ध्वनि एवं साक्षात् दर्शन से हम वंचित हुए। अर्थात्, हमारे लिए इस दृष्टि से यह शोक का भी दिन है। शोक मनाना

भी असाता के आसव का कारण होने से हम शोक नहीं मनाएंगे। किंतु अहिंसा का उपदेश देने वाले महावीर भगवान के निर्वाण के अवसर पर पटाखे फोड़ना कहाँ तक उचित है? पटाखे फोड़ने से जीवों की हिंसा होती है, साथ ही ध्वनि और वायु प्रदूषण भी होता है। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पर्यावरणीय हानि भी बहुत होती है। अतः पटाखे फोड़कर यह निर्वाण दिवस मनाना कहाँ तक उचित है? इस गंभीरता से विचार करना चाहिए।

वास्तव में आठ कर्मों (चार घाति + चार अघाति) का अभाव करके जिस दिन महावीर भगवान का निर्वाण हुआ, उस दिन गुरु विरह से गौतम गणधर शोक में नहीं बैठे। बल्कि उसी दिन अपने ध्यान को बढ़ाते हुए कार्तिक कृष्ण अमावस्या की शाम को केवलज्ञान की प्राप्ति की और महावीर भगवान की रुकी हुई देशना को आगे बढ़ाया। गुरु का सच्चा शिष्य वही है जो गुरु के बाद शोक दुःख में समय न गँवा कर गुरु की योग्यता प्राप्त करे और उनके उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पुरुषार्थ करता रहे। इस दृष्टि से महावीर भगवान के सच्चे शिष्य गौतम गणधर दिखते हैं। क्या हम उन सिद्धांतों को जानकर, समझकर, यथशक्ति जीवन में अपनाकर एवं साधर्म्य भाई-बहनों तक पहुंचाकर भगवान महावीर के सार्थक शिष्य बनने का संकल्प कर सकते हैं? विचारणीय

इस प्रकार महावीर भगवान के बाद तीन अनुबद्ध केवली हुए। गौतम गणधर, सुधर्मस्वामी, और जम्बुस्वामी। तीनों ही 12-12-12 वर्ष के अंतर से हुए। अंतिम अनुबंध केवली जम्बुस्वामी मथुरा से निर्वाण को प्राप्त हुए। उनके बाद अनेक आचार्य, उपोध्याय और साधु भगवंतों ने अपनी-अपनी योग्यता अनुसार महावीर भगवान के द्वारा दी गई देशना के अनुसार तत्त्वज्ञान को प्रकाशित किया। पंचम काल के अंत तक ऐसे भावलिंगी संत होंगे। स्वयं की आत्म साधना के साथ-साथ परहित में भी निमित्त बनेंगे।

हमें भी 'आदहिदंच कादव्वं जं सक्कइ परहिदंच कादव्वं' इस प्रकृति की उक्ति अनुसार कार्यरत रहना चाहिए।

अब ज्ञान की प्रतियोगिता में हिस्सा लें! **PDF** पढ़कर सवालों के जवाब दें और बनें इस दिवाली के ज्ञान-विजेता: <https://forms.gle/qnfpDPXTy4agAUMk8>

🏆 सबसे ज्यादा अंक लाने वाले प्रतिभागियों को मिलेंगे आकर्षक पुरस्कार! 🎁

जय महावीर - जय जिनेंद्र

गुलाबचंद बोरालकर (मुख्य अध्यापक)

गुरुदेव समन्तभद्र विद्यामंदिर

Life Journey of Lord Mahavir

The current interpretation of the word "Jain" has become narrow, referring only to someone born in a Jain family. However, if we look closely, there was never any division of people based on birth. During the time of Lord Adinath, caste divisions were based on karma (deeds). Those who engaged in study and teaching were Brahmins, those who protected others were Kshatriyas, those involved in trade were Vaniks, and those who served others were Shudras. Among the people born in Jain families where trade was prominent, they were called Jain Vaniks. However, even among them, those who carried out protective roles were called Kshatriyas and had similar titles. From this perspective, according to Jain beliefs, all 24 Tirthankaras were Kshatriyas. Still, the merchant-oriented Jains have accepted individuals who renounced feelings of raag and dwesh, born in Kshatriya families, as Lord Tirthankaras.. For this reason, the current caste division based solely on birth is considered narrow-minded.

So, the question arises, who are Jains? Just as those who follow Shiva are called Shaivas, those who follow Vishnu are called Vaishnavas, and those who follow Gautama Buddha are called Buddhists, similarly, those who follow the Jina (Arihant) are called Jains. A Jina is not a specific person, but anyone who has conquered raag and dwesh. Whether they are born into a Brahmin or Kshatriya family. You can call them by any name – Buddha, Veer, Jina, Hari-Har, Brahma, or call them independent.

According to Jain belief, this universe is eternal, infinite, and self-regulated. Based on the cycle of time (Kaalchakra), a Kalpkaal of '20 Koda-Kodi Sagar years' is divided into two parts. The period where happiness, lifespan, physical attributes, etc., are in decline is called the Avsarpini (Descending) period, and the period where these are increasing is called the Utsarpini (Ascending) period. Both these periods last for 10 Koda-Kodi Sagar years each.

The six divisions of the Avsarpini period are:

1. Sukhma-Sukhma
2. Sukhma
3. Sukhma-Dukhma
4. Dukhma-Sukhma
5. Dukhma
6. Dukhma-Dukhma

The names themselves reflect the decline of happiness. Conversely, the six divisions of the Utsarpini period are:

1. Dukhma-Dukhma
2. Dukhma
3. Dukhma-Sukhma
4. Sukhma-Dukhma
5. Sukhma
6. Sukhma-Sukhma

In both Utsarpini and Avsarpini, the Tirthankaras are born during the Dukhma-Sukhma phase. This phase is the third in Utsarpini and the fourth in Avsarpini. Currently, the decline in happiness, physical attributes, and lifespan is evident, indicating that we are in the Avsarpini period. Due to some exceptional reasons, this specific phase is also referred to as 'Hunda Avsarpini'.

Whether it is the Utsarpini or Avsarpini period, in both cycles, 24 Tirthankaras have been born. Not one more, not one less. Among the 24 Tirthankaras of the current Avsarpini period, the first was Tirthankar Rishabhdev, whose symbol is the bull. The last Tirthankara was Mahavir, whose symbol is the lion. All these Tirthankaras, in their lifetimes, eliminated raag and dwesh and became Vitaragi (free from passions). After becoming Vitaragi, they attained omniscience (Sarvagya), and after becoming Vitaragi and Sarvagya, they gave world-benefiting teachings, which is why they were called Hitopadeshi (benefactors). **Those who are Vitaragi, Sarvagya, and Hitopadeshi are known as Tirthankaras.**

The Tirthankaras, who play a crucial role in the liberation of worldly beings, are highly virtuous souls. Six months before they enter their mother's womb, there is a daily shower of 3.5 Crores jewels on their birthplace by Indra, creating a celebratory atmosphere. Five key events in the life of these Tirthankaras are considered auspicious, and they are called 'Panch Kalyanak.' These five Kalyanaks are: 1. Garbh Kalyanak, 2. Janm Kalyanak, 3. Tap Kalyanak, 4. Gyan Kalyanak, 5. Moksha Kalyanak.

The body of Tirthankara Parmeshthi is beautifully proportioned in every way. They have 'Samchaturastra' (symmetrical arrangement) and 'Vajravrashabhnanarach sanhanan' (strong). The body has 1008 excellent symbols. Their body is free from sweat and excrement, and the blood is as white as milk. Normal people require a guru to progress in life, while the soul of a Tirthankara is called a self-realized (Buddha). They do not need to go to anyone to receive Diksha; when the time comes, they take Diksha on their own. For this reason, they are also referred to as self-initiated.

Due to the rise of specific merits, the celestial goddesses are always ready to serve the soul of the Tirthankara six months before it enters the womb. This soul possesses three types of knowledge from the very stage of gestation: Mati Gyana, Shrut Gyana, and Avadhi Gyana.

After the first Tirthankara, Rishabhdev, in this Avasarpini, there were 24 Tirthankaras in succession, including Ajitnath, Sambhavnath, and Abhinandanath, among others. All of them, after achieving self-realization and attaining knowledge, also contributed to the welfare of humanity through the Samavasarana. As soon as the Tirthankara attains omniscience (Keval

Gyana), the Samavasarana is created by Kubera Indra at the command of Saudharma Indra. The congregation of Tirthankara Parmeshthi is referred to as the Samavasharan. In this congregation, not only beings of the human race are present, but also celestial beings and tiryanch (animals) are there to seek their respective welfare. In total, there are 12 assemblies: eight for celestial beings, three for humans, and one for tiryanch beings. The term '12 assemblies' refers to 12 chambers. Sitting in their respective places, these beings understand the divya dhvani (divine sound) of Tirthankara Bhagwan through the Gandhar and receive the knowledge of the essence in their own languages. Even beings of contrary natures, such as lions-cows, serpents-mongoose, forget their enmity in the Samavasarana and understand the essence of their true nature and the nature of substances. To be honest, being born in the era of such Tirthankaras, witnessing their presence, and gaining the benefit of hearing their divya dhvani (divine sound) is a rare event. However, mere hearing of the divya dhvani (divine sound) is not sufficient for attaining happiness; it is only through corresponding transformations in life after hearing the divya dhvani (divine sound) that all this becomes possible.

The period from the first divya dhvani (divine sound) in the Samavsharan of Tirthankar Parmeshthi, after his attainment of Keval Gyaan, is considered starting of his reign, and this reign continues until the first divya dhvani (divine sound) of the next Tirthankar. Thus, from the first divya dhvani (divine sound) of the first Tirthankar, Rishabhdev, to the first divya dhvani (divine sound) of the second Tirthankar, Ajitnath Bhagwan, the reign of Tirthankar Rishabhdev was established. In this way, the reign of 23 Tirthankars continued in succession.

During the reign of the 23rd Tirthankar, Parshvanath Bhagwan, King Siddharth was residing with his queen, Trishala Devi, in the Kundgram of the Vaishali Republic in the Bharat region. The beauty of this Vaishali Kundgram resembled that of Ayodhya. Changes had already begun to occur in the disposition of the citizens there even before the Lord's descent. The citizens started experiencing happiness, prosperity, and joy. Astonishing transformations began to manifest in Vaishali Kundgram, **as shower of 3,50,00,000 gems** started occurring three times a day in King Siddharth's courtyard. Observing these remarkable changes, a group of curious people was informed by experienced and knowledgeable individuals that this was an auspicious sign of the descent of the last Tirthankar, the 24th Tirthankar, in this Avsarpini era. Such physical and mental transformations are possible even before the arrival of distinguished individuals; that is, it is an early indication of the auspicious rise of the Bharat region.

In the '**Nandyavart**' royal palace of the Vaishali Kundgram, Queen Trishala Devi was happily residing with King Siddhartha. Queen Trishala Devi began to experience both internal and external changes. She started to feel an internal unexpressed sensation. On the night of the **sixth day of the Shukla month of Ashada**, Trishala Devi was sleeping in her palace. During the last watch of the night, she had **16 auspicious dreams**. After dreaming, Trishala Devi was filled with excitement, and at that moment, the soul of Lord Mahavir descended from the sixteenth heaven into the womb of Trishala Devi. Seeing these delightful auspicious dreams, Trishala Devi was extremely overjoyed. Approaching King Siddhartha, who was seated in the royal court, the queen shared the dreams she had seen and asked about their significance. From King Siddhartha, it was revealed that the 24th Tirthankara had already descended into the queen's womb. Upon hearing this, the queen experienced immense joy, as if she had received

an unimaginable treasure. Joy and happiness enveloped the Vaishali Republic. The sound of "Blessed is He—blessed is He" began to emerge from everyone's lips. Indra and Indrani came to the Vaishali Kundgram and honored the parents. The celestial goddess (dikkkumari devi) eagerly began to serve Queen Trishala. Not only humans and gods but even the denizens of hell got relaxed of their pain for a moment. This was all due to the auspicious influence of the Tirthankara's conception. Even in the womb, the soul of the last Tirthankara was endowed with Samyaktadarshan, Mati Gyaan, Shrut Gyaan, and Avadhigyaan.

The Dikkumari goddesses, eager to serve Mother Trishala, were also seeking solutions to their religious doubts from her. It was as if the soul of the unborn Tirthankar was resolving their doubts through the mother's words. With such discussions on dharma, Mother Trishala experienced the highest feelings of joy, and after nine months of bliss, the time for the Lord's divine incarnation and birth arrived. On the auspicious occasion of **Chaitra Shukla Trayodashi**, the Lord was born in Vaishali Kundgram. In the year 598 BCE, on March 28, Monday – according to astrological science, such an optimal conjunction of all the planets occurs only 24 times in the 10 Kodā-Koḍī sea. It is then that the Tirthankar Lord is born.

As soon as the Tirthankara child was born, Indra arrived at Kundagram, accompanied by the family of gods and goddesses, to celebrate the auspicious occasion of the Lord's birth, seated on his elephant, Airavata. Shachi, the Indrani, entered the chamber of Mother Trishala and lifted the child Tirthankara in her arms. Celestial beings don't have any kids. Yet, overwhelmed by maternal love and devotion to the Tirthankara Lord, Shachi Indrani became emotionally moved. The mind of Indra was unable to find satisfaction merely with his two eyes while gazing upon the child Tirthankara. Therefore, Indra was observing the beauty of the Lord with a thousand eyes. This implies that even a thousand eyes were insufficient to behold his beauty, let alone describe his inner charm. Indra brought the child Tirthankara to the eternal Sumeru mountain for his birth-abhiṣheka (consecration). It is noteworthy that the world-revered child Tirthankara was born **178 years** after the liberation of the 23rd Tirthankara, Parshvanath. Seeing the lion emblem on the child's left foot, Indra popularized the symbol as that of a lion. During the birth-abhiṣheka of the Lord, Indra addressed the child Tirthankara as '**Veer**.' After the consecration on Mount Sumeru, Indra arrived in Kundagram of Vaishali with the Lord's ceremonial procession and handed the child over to his mother, saying that this child would be the one to establish the Dharma Tirtha. After honoring King Siddhartha and Queen Trishala, Indra returned to the heavenly realm.

The divine beings, taking the form of small children, began to play with the valiant child Tirthankar. Who wouldn't enjoy playing with the Tirthankar child? The valiant child is playing with those deities—who is divine? Who is human? It became difficult to discern. From the very birth of the valiant child, the glory of the Vaishali Republic began to increase in every aspect. Therefore, Mother Trishala named the valiant child '**Vardhaman**.' The beautiful body of the child Vardhaman exhibited 10 extraordinary qualities from birth. His body was free from excrement and sweat, as white as milk, has Vajravrashabhinarach sanhanan, fragrant in breath, possessing a wondrous form, extraordinary strength, and a sweet voice. His body bore 1008 excellent marks. Fifty-six celestial goddesses sang beautiful auspicious songs while holding the child Vardhaman in their laps. From childhood, the child Vardhaman discussed the path to liberation

with his mother, Trishala Devi. Blessed is that mother who discusses religion with her son, and blessed is that son who never tires of serious discussions about profound truths with his mother during his childhood. **Are we also ready to discuss and instill religious values in our children according to our capacity? Are we sending them to the temple daily? Are we sending them to school? A matter worth contemplating!!**

As the young boy Vardhman grew a little older, he was playing with his companions. At that moment, a fearsome, venomous snake slithered in, hissing loudly. The accompanying royal princes got frightened and ran away in fear. However, the young boy Vardhman boldly began to play with the snake. Seeing the boy's fearlessness, Sangam Dev, who had taken the form of the snake, asked for forgiveness for doubting the extraordinary power of the young boy Vardhman. Addressing the boy as 'Mahavir,' Sangam Dev said, "O Lord, you truly are 'Mahavir.' Even the gods of heaven praise your immense strength. I, out of ignorance, doubted your valor and took the form of a snake to test you. Please forgive me. Truly, you are not just a brave one but a Mahavir. What impact will external circumstances have on those who conquer inner enemies resembling passions? By being in the company of such a one, even the venomous snake becomes harmless and non-violent, expelling the poison of falsehood and partaking in the nectar of right knowledge.

Veer Vardhman, embodying the name Mahavir, was already possessed of **kshayik samyagdrashti**(stable right vision), free from attachment, delusion, and infinite bonds. At the age of eight, having eliminated anger, pride, deceit, and greed, he embraced the **Anuvrat** (minor vows). He attained a state of spiritual purity and made progress in the path of self-realization. The Lord always exhibited the bravery to conquer passions.

On the fourth floor of the seven-storied royal palace named Nandyavarta, young Mahavir was engrossed in meditation. His friends on the first floor began to inquire about Mahavir from his mother. The mother asked them to look up. When they asked King Siddhartha, who was on the seventh floor, he instructed them to look down. As they searched each floor, the companions grew increasingly frustrated and began to talk to Mahavir in annoyance. Young Mahavir addressed his friends, explaining how their views were valid based on their parents' words, thus alleviating their frustration. In this manner, young Mahavir explained the principle of Anekant (non-absolutism) and the Syadvada style that illustrates the multiple facets of truth. Those who do not understand this remain blissfully ignorant in the world. By elucidating the path to happiness through this understanding, young Mahavir guided his friends.

Once, while sitting in the royal palace, Mahavir heard cries of "Save us! Save us!" The king's elephant was rampaging on the highway, creating chaos. The people were running around in fear. The bearer of ultimate peace, Mahavir, approached the rampaging elephant, telling the people on the highway to remain calm. The enraged elephant also charged toward Mahavir, but upon seeing his gentle and calm demeanor, the elephant became still and stood peacefully in front of Mahavir. Everyone was watching. Mahavir conquered the angry elephant with the weapon of forgiveness. We want to conquer anger with anger and passions with passions in our lives. Is this ever possible? A matter for contemplation.

Once, Mahavir was sitting with his mother at a window of the Nandyavart royal palace when two Munirajs named Muni Sanjay and Muni Vijay were returning from the eternal pilgrimage site of Sammed Shikharji. They were flying in the sky above the royal palace of King Siddharth in Kundagram, Vaishali. They had subtle doubts regarding the tatva in their minds. As soon as the two Munis caught sight of the young Mahavir, their doubts were dispelled. With their newfound clarity, the souls of both Munis were filled with joy. They began to contemplate the glory of the young Tirthankar. Delighted, both Munis addressed the young Mahavir as '**Sanmati**'.

The bearer of these three superior types of knowledge -Mati Gyana, Shrut Gyana, and Avadhi Gyana ,the child Mahavir, who held four excellent and meaningful names—Veer by Indra, Vardhman by his parents, Mahavir by Sangam Dev, and Sanmati by the two Munis—began to grow progressively. Even as he reached young adulthood, material pleasures never attracted him. As a connoisseur of spiritual bliss, Prince Mahavir began to lead a life akin to Rajyoga. He would remain absorbed in meditation while standing outside the royal palace at midnight, spend hours contemplating the essence of reality with a mind detached from the world, and show disinterest in state affairs. Listening to the joys and sorrows of the citizens and revealing the true nature of the world and the path to genuine happiness became part of his daily life. Although the enlightened Prince Mahavir would sit in the royal assembly with King Siddharth, he never found any pleasure in it. Seeing the prince's valor and qualities of beauty, many kings began to discuss marriage alliances for their princesses. King Siddharth and Queen Trishala were also delighted with the forthcoming alliances and were eager to have a stunningly beautiful princess as their daughter-in-law. At that time, the parents sought the young Mahavir's consent for marriage. However, he was a true hero, a Mahavir who upheld detachment. He wanted to marry the divine beauty of liberation, beyond the attachments of the world and the five senses, relishing the essence of consciousness. How could one who desired the extraordinary divine beauty of liberation be attracted to worldly pleasures? The unattached young Mahavir advised his parents to relinquish parental attachment.

Chandanbala, Queen Trishala's younger sister (Mahavir's aunt), welcomed Mahavir's renunciation wholeheartedly in the nearby city of Vaishali. Upon learning of Prince Mahavir's decision to remain unmarried, Aunt Chandanbala also decided to embrace lifelong celibacy. Who would not be delighted by the fragrance of the renounced lives of such two individuals?

The detachment of Prince Mahavir was increasing day by day. Along with that, his age was also progressing. At the age of 30, Prince Mahavir was attaining purity. One day, he experienced recollection of his past births. He witnessed the grandeur of a Chakravarti, the state of a lion, the realization of right perception by two monk saints, and the conditions of hell. By understanding his past lives through recollection, Mahavir decided to take initiation (Jin Diksha). His decision meant a firm, unwavering, and strong determination. Today, seeing Mahavir deeply contemplative, his mother wanted to ask something. Then the yogi Mahavir spoke about his detachment after seeing his past lives through recollection. Today (on the day of **Magashirsha Krishna Dashami**), he talked about accepting Muni Diksha and the practice of seeking his supreme soul through pure application. As this discussion was going on between mother and son, the throne of Indra in the assembly began to shake. Knowing through his avadhi gyan (profound knowledge) that this was an opportunity for the Diksha Kalyanak, all the gods

immediately gathered at Vaishali Kundagram. Apart from the Diksha Kalyanak (initiation welfare), the worldly gods (Devs) who did not attend other Kalyanaks praised the Lord's feeling of detachment. Triumphant over the allure of sensual pleasures, the entire atmosphere became filled with the essence of detachment. To attain the essence of non-attachment, Mahavir sat in the palanquin named 'Chandraprabha,' relinquishing the adornments of desire and sensuality. As soon as the dev (celestial being), who celebrates all the Kalyanaks of the Tirthankara Lord, stepped forward to lift the palanquin, the human kings stated that the honor of lifting the palanquin was solely for those with the capability of accepting the virtue of character. This led to a debate among the gods and humans about who would lift the palanquin first. Ultimately, Lord Mahavir gave the first respect to the virtue of character. Despite being endowed with divine powers, Indra became displeased due to his inability to accept the virtue of character. He began to ask for the virtue of character even for a moment, despite having all his grandeur. Since the capability to accept the virtue of character is only possible in human existence, Indra's own throne began to seem insignificant in front of the virtue of character and human existence. Eventually, the human kings lifted the palanquin for the first seven steps, followed by the Vidyadhars (scholarly Kings) who lifted it for the next seven steps. After that, the Devs lifted the palanquin and took Lord Mahavir towards the forest. The greatness of human restraint is even greater than the divinity of the heavenly realm. For this reason, even Indra had to bow down before the power of restraint (Sanyam).

On the western bank of the Ganga River, in the garden named Nagkhand, Lord Mahavir alighted from the palanquin and sat on a rock. He said 'Namah Siddhebhya' and renounced all bodily ornaments, clothes, etc., embracing the state of a naked Digambara Muni on the day of **Maagha Shukla Dashami**. He was self-initiated (took diksha on his own). At the time of his Muni Diksha, he was 30 years old. After his Diksha, Muni Mahavir traveled throughout Bharat (India). The region where Muni Mahavir traveled the most came to be known as Bihar. Even today, many places related to Lord Mahavir exist in the Bihar region.

Muni Mahavir was in the Muni form for 12 years. As he wandered, he reached the city of Yogiraj Ujjain. There, on the banks of the Shipra River, in a terrifying cremation ground called Atimuktaka, he became absorbed in deep meditation. Utterly peaceful, steadfast, unwavering, and free from all attachments, Muni was immersed in his inner spiritual garden. At that time, in the court of Indra, his patience and courage were being praised. Hearing this praise, a Yaksha named Bhavya decided to test him and appeared at the cremation ground. He took on a fearsome form, transforming into a lion, a serpent, and other terrifying shapes, trying his best to disturb the meditating Muni. He hurled stones, cast fireballs, but the Muni was deeply inward-focused, completely unaware of the external happenings. Muni Mahavir was unaffected by the Yaksha Bhavya's attacks. Truly, no one has the power to disrupt the deep spiritual focus of a Muni absorbed in self-meditation. Ready to transcend the cycle of birth and death, Muni was untouched by Bhavya's disturbances. In the face of the serene composure of the Muni, the fierce actions of the Yaksha were defeated. Acknowledging his failure, Bhavya Yaksha bowed at the Muni's feet, seeking forgiveness, and said, "O Lord, you are not just Mahavir the Brave, but you are '**Ativira**,' the Ultimate Brave." Relinquishing his fearsome form, the Yaksha asked for forgiveness and praised the Muni's intense austerity before returning to his abode. Thus, our

protagonist became known by five meaningful names—Veer (Brave), Mahavir (Great Hero), Vardhamana (Ever-growing), Sanmati (Wise), and Ativira (Ultimate Brave).

Once, Mahavir's aunt Chandanbala was playing in her garden with her friends. Attracted by her beauty and youth, a Vidyadhar (a celestial being) kidnapped her, but later, out of fear of his wife, he abandoned Chandanbala in the dense forest of Kaushambi city. In the forest, the chief of a tribe captured her and sold her to a courtesan. That courtesan then put Chandanbala up for sale in the courtesan market of Kaushambi. Oh, the strange ways of karma! A virtuous woman is being sold by a courtesan in the courtesan's market. What a play of virtue and sin! In the same Kaushambi market where Chandanbala is being sold, the queen of Kaushambi, Mrigavati, happens to be Chandanbala's own sister. One aunt of Mahavir is being sold by the hands of a courtesan, while another aunt is the queen of the same city, unaware of this event. Truly, everyone must bear the fruits of their karma, whether virtuous or sinful.

In the same city, a pious merchant named Seth Vrishabhadatta saw Chandanbala being sold. He thought, "This beautiful woman cannot be a prostitute," and upon approaching her, he heard her reciting the 'Namokar' mantra. Witnessing this virtuous woman enduring the consequences of her past actions, the merchant, considering her like his own daughter, paid the prostitute the asked price and brought Chandanbala to his home. Childless, Seth Vrishabhadatta accepted her as his spiritual daughter.

However, his wife, Sethani Subhadra, was filled with many doubts. It is true that during the rise of sinful deeds, one often becomes a subject of suspicion. One day, when the merchant was away in another village, out of envy, Subhadra cut Chandanbala's beautiful hair. Believing that her husband was captivated by Chandanbala's beauty, she locked Chandanbala in a harsh chamber. Chandanbala fasted for three days. When Seth returned after three days and did not see Chandanbala, he grew suspicious. Eventually, he found her locked in a chamber, bound with iron shackles on her hands and feet. At that moment, Seth understood everything. His first thought was to free her from the bonds, so he went to call a blacksmith. At the same time, Muni Mahavir came to Chandanbala's chamber seeking aahar. With a pure heart, Chandanbala had been wishing to offer aahar to the Muni, but alas, her situation was dire. The true desire to offer aahar, the presence of Urad seeds in her possession, the arrival of Muni Mahavir, and the exhaustion of her negative karma all coincided, allowing her good fortune to flourish.

Chandanbala placed the first handful of Urad dal into Muni Mahavir's hands, and at that very moment, celestial drums resounded, and there was a shower of divine jewels. All around, there were shouts of praise for Sati Chandanbala and Muni Mahavir. Before Seth Vrishabhadatta could return with the blacksmith, Chandanbala had already been freed from her shackles. A crowd gathered to witness the fortunate woman who had offered the first meal to the Muni. Queen Mrigavati also arrived at the scene. Recognizing her, she exclaimed, "This is none other than my sister Chandanbala!" and was filled with immense joy. While she was elated, Queen Mrigavati also felt sorrow for the hardships her sister had endured. She wanted to take Chandanbala back to her palace, but Chandanbala had now expressed her desire for renunciation. At her sister's insistence, she spent a few days in Queen Mrigavati's home, living a life of detachment.

Mahavir Muni, while traveling, reached Sammed Shikharji. One is the spiritual pilgrimage, and the other is the established pilgrimage; one is the conscious pilgrimage, and the other is the unconscious pilgrimage. Muni continued his journey while practicing the three jewels (right faith, right knowledge, and right conduct). One day, they arrived at the banks of the Rijukula River near the village of **Jambhik**. There, he meditated on a rock, and a warrior of strength arose to battle the remaining attachment (moh). With the sharp edge of pure awareness, he began cutting through the enemy of attachment. Progressing rapidly through the Kshapak Shreni (path of destruction of karma), he swiftly reached the eighth, ninth, and tenth stages of spiritual development (gunasthanas). Mahavir Muni, completely devoid of even the subtlest attachment, became a perfect Vitaragi (one free from all passions). Before sunset, the sun of omniscience (Kevalgyan), which never sets, shone brightly within Mahavir Prabhu. This event of **Keval Gyan** Kalyanak occurred on the auspicious date of **Vaishakh Shukla Dashami**.

The Lord eradicated the four Ghatiya Karmas and attained the state of Arihant. As soon as Mahavir attained omniscience (Kevalgyan), he ascended 5000 dhanush above the Earth into space. His body became shadowless and assumed a divine form (Param Audarik). Following the orders of Saudharma Indra, Kubera Indra organized the Samavasaran (divine assembly). The religious assembly of the first Tirthankara, Lord Rishabhdev, spanned 12 yojanas in diameter, while Lord Mahavir's religious assembly spanned 1 yojana. However, in both assemblies, the Chaitanya element and the nature of reality that both Bhagwants explained were the same.

Mahavir's Samavasaran was indeed created, but without the presence of a Ganadhar, the divya dhvani (divine sound) did not manifest. Every day, the assembly convened, and people came to listen, but no divya dhvani (divine discourse) occurred. Thus, the Samavasaran continued without discourse for 66 days. The month of Ashadha came to an end, and the Krishna Pratipada of Shravan began. On that day, Saudharma Indra realized through his omniscient knowledge that the divya dhvani (divine sound) was not occurring due to the absence of a Ganadhar. Now, who could be eligible to become a Ganadhar? Saudharma Indra observed that Indrabhuti Gautam, the teacher of 500 disciples and a scholar of the Vedas and Puranas, was indeed worthy of becoming a Ganadhar, but such a profound deluded one would not come to the Samavasaran easily. Thus, Saudharma Indra devised a plan. He disguised himself as an elderly Brahmin and approached Indrabhuti Gautam. There, he asked for the meaning of the verse "Traikālyam dravya shatkam nava pada sahitam." Despite being a great scholar of Sanskrit, Indrabhuti Gautam had never studied the six dravyas and nine substances. Under the influence of pride and ignorance, he said, "Instead of telling you the meaning of this verse, I will tell it to your guru; take me to him." This was exactly what Saudharma Indra wanted, and his plan succeeded. Indrabhuti Gautam, along with his 500 disciples and his brothers **Agnibhuti and Vayubhuti**, proceeded toward the Samavasaran. As they neared the Samavasaran, Indrabhuti Gautam's kashay began to diminish. Upon reaching the Manastambha situated in the Samavasaran, Indrabhuti Gautam's pride dissolved.

Seeing the glory of the Samavasaran and the wonderful detachment of Lord Mahavir residing within it, Indrabhuti Gautam humbly practiced self-restraint at the feet of that supreme soul with his 500 disciples. He had already been practicing right perception (Samyaktva). Gautam Swami

became so introspective as a Muni that he became a possessor of the essence of knowledge (Mati-Shruta-Avadhī-Manahparyaya) and became the first Ganadhar of Lord Mahavir. The divya dhwani (divine sound) that had not been heard for 66 days due to the absence of a Ganadhar in the Samavasaran began to manifest. This first sermon took place on the **Pratipada (first day) of the Krishna month of Shravana** on the Vipulachal mountain in the city of Rajgrihi.

Therefore, this day is known as **Veer Shasan Jayanti**. Many brothers and sisters born into Jain families are unfamiliar with the term Veer Shasan Jayanti. Some consider Mahavir's birth anniversary to be the same as Veer Shasan Jayanti. However, neither Mahavir's birth anniversary is Veer Shasan Jayanti, nor is the day he attained omniscience. In fact, 66 days after his omniscience, when his first divya dhwani (divine sound) manifested, that very day of Shravana Krishna Pratipada is recognized as Veer Shasan Jayanti.

One day, King Shrenik was riding an elephant on his way to the Samavasaran of Lord Mahavir. At the same time, a frog was also carrying a flower in its mouth along the same path towards the Samavasaran of Lord Mahavir. This frog was the former Nagadatt Seth from a previous birth. The frog died after coming under the feet of King Shrenik's elephant. With the intention of worshiping the Lord, it died and attained divine rebirth. It reached the Samavasaran as a Dev before King Shrenik. **The soul of King Shrenik will become the first Tirthankar named Mahapadma** in the coming Utsarpini cycle. Until then, the era of Lord Mahavir will be known. Currently, the soul of King Shrenik is suffering the results of its karma in hell. After the nirvana of Lord Mahavir, the fifth period of the Avasarpini will last for 21,000 years, and the sixth period will also last for 21,000 years. Subsequently, the first period of the Utsarpini will last for 21,000 years, and the second period will last for 21,000 years. Thus, after 84,000 years, in the third period (Sukshma-Sukhma) of Utsarpini, the soul of King Shrenik will become the first Tirthankar named Mahapadma. Meanwhile, there will not be any Tirthankars in the Bharat region until then.

Lord Mahavir had a total of 11 Ganadhars. Their names were Gautam Ganadhar, Agnibhuti, Vayubhuti, Shuchidatt, Sudharm, Mandavya, Mauryaputra, Akampan, Anchala, Medarya, and Prabhas. In the assembly of Lord Mahavir, there were a total of 700 Kevalgyaanis, 14,000 Munirajs, and 36,000 Aryikas. Among these Aryikas, the prominent one was Aryika Chandana.

After 12 years of being a Muni, at the age of 42, Lord Mahavir attained Keval Gyan (omniscience). Thereafter, for 30 years, that is, from the age of 42 to 72, Lord Mahavir continued to wander in the Arihant state, along with his Samavsarana. While wandering, the Lord reached the city of Pavapuri in the Bihar region. There was divya dhwani (divine sound) three times a day. On the day of Kartik Krishna Trayodashi, Lord Mahavir's last divya dhwani (divine sound) was heard in Pavapuri. Therefore, the people of that time called that Trayodashi a dhanya Trayodashi. Greedy people named it Dhanteras and started worshiping the fleeting wealth on Dhanteras. Thus, the Lord's first discourse took place on the Vipulachal Mountain in Rajgriha, and the last discourse occurred in Pavapuri. On Kartik Krishna Chaturdashi, although there was a physical vision of Lord Mahavir, there was no discourse. And on the day of **Kartik Krishna Amavasya**, there was neither the Lord's discourse nor his vision. At the time of the Lord's Nirvana, there were 3 years, 8 months, and 15 days remaining for the commencement of the fifth period (Pancham Kal).

Mahavir Bhagwan attained Nirvana. For an infinite, infinite time, He became supremely blissful. This is indeed a matter of joy for Him and for us. However, we are deprived of His presence, the daily divya dhvani (divine sound), and direct vision. Thus, from this perspective, it is also a day of mourning for us. Since mourning is a cause of the influx of karma, we will not observe sorrow. However, how appropriate is it to burst firecrackers on the occasion of the Nirvana of Mahavir Bhagwan, who preached non-violence? Bursting firecrackers causes harm to living beings, and it also leads to noise and air pollution. There are significant physical, mental, economic, and environmental damages as well. Therefore, how appropriate is it to celebrate this Nirvana day by bursting firecrackers? This should be considered with seriousness.

Indeed, on the day when Lord Mahavir attained nirvana by transcending the eight karmas (four ghātiya and four aghātiya), Gautam Gandhar did not sit in mourning due to the separation from the guru. Rather, on that very day, while enhancing his meditation, he attained omniscience (Kevalgyaan) on the evening of Kartik Krishna Amavasya and continued the interrupted discourse of Lord Mahavir. A true disciple of the guru is one who does not waste time in sorrow after the guru's departure but strives to attain the guru's qualities and works towards fulfilling their objectives. From this perspective, Gautam Gandhar appears to be a true disciple of Lord Mahavir. **Can we, by knowing and understanding those principles, adopt them in our lives to the best of our ability and reach out to our fellow brothers and sisters, make a resolution to become meaningful disciples of Lord Mahavir? This is worth contemplating.**

Thus, after Lord Mahavir, three anubaddh Kevalis were there: Gautam Gandhar, Sudharmaswami, and Jambuswami. All three attained enlightenment at intervals of 12 years each. The last Kevali, Jambuswami, attained nirvana in Mathura. After them, many Acharyas, Upadhyayas, and holy saints revealed the principles of Tattva (truth) according to the discourses given by Lord Mahavir, based on their respective qualifications. Until the end of the fifth era, such spiritually enlightened saints will exist. Along with their own self-discipline, they will also serve the welfare of others.

We should also strive to act according to the saying, 'Ādahidaṃcha kādavvaṃ jaṃ sakkai parahidaṃcha kādavvaṃ' in this nature.

Join the Knowledge Contest! Read the PDF, answer the questions, and become this Diwali's Knowledge Champion! : <https://forms.gle/qnfpDPXTy4agAUMk8>

 Participants with the highest scores will win exciting prizes! 